शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2013

भारतीय समाज एवं संस्कृति में वस्त्रों का महत्त्व

अभया राज ('शोधार्थी)
वस्त्र आकल्पन विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

शोध संक्षेप

भारत की दुनिया को अनेक महत्वपूर्ण देनें हैं, उनमें वस्त्र विद्या भी एक है। वस्त्र विद्या का कौशल दुनियाभर में विख्यात है। हाथ से निर्मित कच्चे धागे के ताने-बाने में पूरा भारत एकता के सूत्र में बंधा रहा है। वस्त्र भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है जो प्राचीन काल से ही भारतीय समाज और संस्कृति में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। प्रस्तुत शोध पत्र में वस्त्रों के महत्व के साथ ही भारतीय संस्कृति और समाज में वस्त्रों के योगदान को रेखांकित किया गया है।

प्रस्तावना -

संस्कृति वास्तव में वह जीवन पद्धति है जिसकी स्थापना मानव व्यक्ति तथा समूह के रुप में निर्माण करता है, उन अविष्कारों का संग्रह है; जिनका अन्वेषण मानव ने अपने जीवन को सफल बनाने के लिए किया है। संस्कृति समाज का मूलधन है। वह मूल्यों की ऐसी पूर्ववर्ती सृष्टि है, जिसमें व्यक्ति पैदा होता है और विकसित है। समाजशास्त्री ई. बी. टेलर के अनुसार -" संस्कृति उन सब वस्तुओं के समूह को कहते हैं, जिसमें ज्ञान, धार्मिक विश्वास, कला, नैतिक, कानून, रिवाज व अन्य योग्यतायें सम्मिलित होती है जिन्हें कोई मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते सीखता है। इसी प्रकार मैथ्यू आर्वाल्ड के अनुसार - " संस्कृति पूर्णता का अध्ययन, मिठास (सौन्दर्य) एवं प्रकाश की अनासक खोज है।" और आगबर्न एवं निमकाफ के अनुसार-"इसमें भवन, औजार वस्त्र, कला, विज्ञान, धर्म तथा मनुष्य द्वारा सीखे हुए काम करने की समस्त विधियों को सम्मिलित किया गया है।" वहीं हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार रामधारीसिंह दिनकर का कहना है, "संस्कृति मनुष्य जीवन में उसी तरह व्याप्त है जैसे दूध में मक्खन अथवा फूलों में सुगंध। एक या दो व्यक्ति मिलकर संस्कृति निर्माण नहीं कर सकते और इसे बनने में हजारों वर्ष लगते हैं।" विश्व की किसी भी जाति की संस्कृति और सभ्यता का पता उसके रहन-सहन तथा आचार-विचारों से लगता है। उसके आचार-विचारों का परिचायक उसका साहित्य है, और रहन-सहन का परिचायक उसका पहनावा अर्थात् वेष-भूषा। रहन-सहन का सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन से है। भोजन हम कितना भी अच्छा क्यों न करें, स्वास्थ्य कितना अच्छा क्यों न हो किन्तु उनसे हमारी उन्नत अभिरुचि और परिष्कृत विचारधारा का परिचय नहीं मिलता है। हमारे स्तर तथा अभिरुचि का द्योतन हमारे शरीर पर धारण किये गये वस्त्रों द्वारा होता है।**1**

वस्त्र-विन्यास का प्रचलन किसी न किसी रूप में आदि काल से ही रहा है। सम्भव है, मानव

संस्कृति के आरम्भिक युगों में प्रकृति की जलवायु संबंधी कठोरताओं से बचने मात्र के लिए, जहाँ जैसी आवश्यकता आ पड़ी लोगों ने चमड़े, पत्ते और पेड़ों की छाल को तात्कालिक उपयोग के लिए अपनाया। वस्त्र का इस रूप में प्रचलन प्राकृतिक आवश्यकताओं की दृष्टि-पथ में रख कर हुआ।

वेशभूषा के इतिहास में वस्त्रों का इतिहास भी आ जाता है, क्योंकि प्राचीन पहरावों में लोगों की रुचि और भी बढ़ जाती है जब अच्छी प्रकार से ज्ञात हो जाता है वे किन सामग्रियों से बनते थे और बहुत साधारण होते थे। भारत के प्राचीन वस्त्र व्यवसाय के इतिहास के लिए भी ऐसी जांच-पड़ताल जरूरी है। उदाहरणार्थ - अभी तक हम प्राचीन भारतीय वस्त्रों के इतिहास के लिए यूनानी लेखकों पर आश्रित थे और उनसे भी हमें उन कपड़ों के भारतीय नाम नहीं मिलते। हमारा साहित्य इस कमी को बहुत हद तक दूर कर देता है। वैदिक, बौद्ध, और जैन साहित्यों तथा आख्यायिकाओं और कोशों में वस्त्रों के ऐसे सैकड़ों नाम सुरक्षित हैं। इस वृहद साहित्य में आयी तालिकाओं और उनकी टीकाओं से उन वस्त्रों के केवल नाम ही नही अपितु उनके विवरण भी मिलते हैं। साहित्य से यह भी पता चलता है कि देश के किन भागों और नगरों में अच्छे कपड़े बनते थे।**2**

वस्त्र विन्यास का परिचय तत्कालीन साहित्य के साथ मूर्तियों और चित्रों से भी मिलता है। वस्त्र के उत्पादन, उनकी रंगाई, वस्त्र विन्यास के प्रति अभिरुचि आदि विषयों का परिचय प्रायः साहित्यिक उल्लेखों से ही ज्ञात हो सका है। वस्त्र सम्बन्धी अन्य सूचनाओं के लिए साहित्य अमूल्य निधि है। सिन्धु सभ्यता के युग की मूर्तियों और चित्रों से उस समय की वेशभूषा का परिचय मिल जाता है, पर उसके परवर्ती युग में मौर्य-काल के पहले तक की वेश-भूषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साहित्य के अतिरिक्त अन्य साधन प्रायः वहीं उपलब्ध हैं। उसमें वैदिक साहित्य वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, तथा सूत्र ग्रन्थ, मूल बौद्ध साहित्य, त्रिपिटक, जैन साहित्य - अंग तथा उपांग, व्याकरण में पाणिनी के अष्टाध्यायी है।**3**

आवरण, अंलकार एवं अनुष्ठान, इन त्रिविध आवष्यकताओं की पृष्ठभूमि में पौराणिक स्थल, वस्त्रालंकार का विवरण देते हैं। गार्हस्थ्योचित सदाचार को विवृत करते हुए विष्णु पुराण का आदेश है कि गृहस्थ ऐसे दो वस्त्र धारण करें जो फटे न हों। वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराण के वर्णानुसार वस्त्र देवता का सन्निधान एवं देव-स्तुति की प्रतिष्ठा है। धार्मिक कार्यों का सम्पादन वस्त्र के अभाव में सम्भव नहीं है।**4** मत्स्य पुराण की व्यवस्थानुसार भी विभिन्न धार्मिक अवसरों पर वस्त्रावृत रहना आवश्यक है। ये पौराणिक उद्धरण मनुष्यार्थ वस्त्र की आवश्यक एवं उपादेयता को सुस्पष्ट कर देते हैं।

सभी लोग भारतीय जीवन और उसके अधिभौतिक साधनों से बहुत प्रेम करते थे। सुसज्जित महल, करीनेदार नगर, अनेक जातियों और वर्णों वाले दास दासियों से युक्त राज्य सभायें, वादक और नर्तक और चमचमाते हुए गहने, अनेक प्रकार की वेष-भूषायें और कपड़े, प्रसाधन के लिए अनेक प्रकार के गन्ध द्रव्य, ये सब भी भारतीय संस्कृति और जीवन के प्रतीक थे। दार्शनिकों को सभ्यता के इन बाह्य प्रतिकों में

अस्थिरता भले ही दीख पडती हो लेकिन सांसारिकता में पड़े एक साधरण जन के लिए तो सभ्यता के ये प्रतीक सत्य सुन्दर ही जान पड़ते हैं। इनमें मिले विवरणों की सभ्यता हम पुरातत्व मूर्तियों और चित्रों से जाँच सकते है। भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग में कपड़े पहनने का ढंग बदल जाता है।**5**

अत्यन्त सहज एवं सुरुचि पूर्ण पोषाक अर्धनारीश्वर के रूप में है, जिसमें शरीर का आधा भाग लगभग उघड़ा हुआ अथवा वाघ की खाल या हाथी के चमड़े से ढंका हुआ है जिस पर आभूषणों के रुप में रेंगते सर्प हैं, परन्तु शरीर के बाई ओर का भाग सलीके से सुसज्जित हैं। पहाड़ों की राजकुमारी पार्वती हर संभव आभूषण से सजीधजी तथा भव्य वेशभूषा धारण किये हुए है। **6**

वस्त्रों तथा आभूषणों द्वारा शरीर को अत्यधिक सजीले तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति मनुष्य में जन्म से ही रही है। प्राचीन साहित्य में उल्लिखित तथा मूर्तियों, चित्रों एवं कला-मण्डपों पर अंकित तथा उत्कीर्णित छवियों में मनुष्य की सौन्दर्य प्रसाधन की अभिरुचि का पता चलता है। अतः वस्त्र मनुष्य की दूसरी महत्वपूर्ण जरूरत है। अमीर हो या गरीब, रोगी हो या स्वस्थ्य, शिक्षित हो या अशिक्षित युवा हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष सभी के जीवन में वस्त्रों का विषेष महत्व है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य किसी न किसी प्रकार से संस्कृति से अवश्य जुड़ा रहता है। जो समाज में उसकी पहचान बनाती है। इसी संस्कृति का एक अंग वस्त्र भी है।

सन्दर्भ

1 राय, सिद्धेशवरी नारायण, पौराणिक धर्म एवं समाज, पञ्चनद पब्लिकेशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1968

2 उपाध्याय, डा. रामजी, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति, रामनारायण लाल बेनी माधव प्रकशन, इलाहाबाद, 1963

3 कुमारी, डा. किरण, भारतीय संस्कृति कोश भाग 2, कला एवं कलाकृति, बी. आर. पब्लिकेशन कार्पोरेशन, नई दिल्ली,

4 गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति

5 कादरी,एस. एम. असगर अली, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं कलाएं, लिटरेरी पब्लिकेशन, बरेली,

6 जोशी, तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री, साहित्य अकादमी, दिल्ली,